बंगाल के संन्यासी–फकीर विद्रोह : एक ऐतिहासिक अध्ययन

डॉ. अवनीन्द्र कुमार,
पी–एच.डी.,
बी.आर.ए.बी.यू.,मुजफ्फरपुर, बिहार

18वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में आदिगुरू शंकराचार्य के अनुयायी दषनामी सम्प्रदाय के नागा संन्यासी एकजुट होकर केवल उत्तरी बंगाल में ही नहीं अपितु पूर्वी बंगाल में भी ब्रिटिष औपनिवेशिक शोषण के विरूद्ध सषस्त्र विद्रोह किया था। शंकराचार्य के अनुयायियों को देखकर मुस्लिम मदारी फकीरों ने भी इस विद्रोह में शामिल हो गये। 1750–1800 ई. तक के बंगाल का इतिहास खासकर असित नाथ चन्द्रा, *'द संन्यासी रिवेलियन'*; जैमिनी मोहन घोष, *'संन्यासी एण्ड फकीर रेडर्स इन बंगाल'* की पुस्तक; डेविड एन.लोरेनजन, *'वारियर असेईटिक्स इन इण्डिन हिस्ट्री'* का आलेख तथा बंकिमचन्द्र चटर्जी के उपन्यास *'आनन्द मठ'* आदि के अध्ययन से ज्ञात होता है कि ये गृहत्यागी संन्यासी इस विद्रोह में अकेले नहीं थे बल्कि मुगल साम्राज्य के बेरोजगार और भूख से पीड़ित पदच्यूत सैनिक, दस्तकारों व भारतवर्ष की बहुसंख्यक जनता का प्रतिनिधित्व करनेवाले कृषक भी थे।[1]

1757 ई. में प्लासी के युद्ध में नवाब सिराजुद्दौला की पराजय के उपरांत बंगाल के इतिहास में एक नए युग का सूत्रपात हुआ। ईस्ट इंडिया कंपनी व्यापार के साथ–साथ बंगाल की राजनीति में भी हस्तक्षेप करना प्रारंभ किया। 1764 ई. के बक्सर युद्ध में ईस्ट इंडिया कंपनी ने एक बार पुनः बंगाल के नवाब मीर कासिम एवं अवध के नवाब शुजाउद्दौला की संयुक्त सेनाओं को पराजित किया। परिणामस्वरूप 1765 ई. में ईस्ट इंडिया कंपनी को बंगाल की दीवानी अधिकार प्राप्त हुआ। जिसके कारण बंगाल में राजनीतिक अस्थिरता एवं अव्यवस्था फैल गयी।

क्योंकि सैन्य शक्ति अंग्रेज व्यापारियों के हाथ थी जबकि प्रशासन का उत्तरदायित्व नवाब के ऊपर था। एक तरफ तो उसे अपने राज्य की प्रजा की देखभाल करनी थी एवं दूसरी तरफ अंग्रेजों के आश्रित के रूप में उनके व्यापारिक हितों की रक्षा करते हुए आम जनता के शोषण का मूक दर्शक बने रहना था। नवाब द्वारा किसी भी प्रकार के हस्तक्षेप करने पर उसे अपनी गद्दी से हाथ धोना पड़ता। इन विषम परिस्थितियों में नवाब के पास अपनी प्रजा को ब्रिटिश औपनिवेशिक शोषण का शिकार होते देखने के अलावा कोई उपाय न था।[2]

1765 ई. से 1793 ई. के बीच कंपनी प्रशासन ने दो महत्त्वपूर्ण कदम उठाए। प्रथम उन्होंने अपनी राजनीतिक शक्ति का प्रयोग व्यापार पर एकाधिकार स्थापित करने के लिए किया ताकि उत्पादन एवं वितरण पर पूर्ण रूप से उनका नियंत्रण बना रहे तथा द्वितीय अधिकाधिक भू–राजस्व की बसूली हेतु कृषि क्षेत्र में निरंतर नए–नए प्रयोग किए।[3] ब्रिटिश व्यापार व वाणिज्य की इन नीतियों ने बंगाल के कृषकों, कारीगरों और कुटीर उद्योगों में रेशम और हथरकरधा आदि की दशा अत्यंत ही शोचनीय बना दिया।[4] साथ ही ब्रिटिश शासन के सहयोगी भारतीय जमींदारों के शोषण तथा अत्याचारों का भी उन्हें शिकार होना पड़ा। फलतः इन शोषित व पीड़ित किसानों एवं कारीगरों के पास विद्रोह के अतिरिक्त कोई विकल्प नहीं बचा।

इस औपनिवेशिक शोषण ने बंगाल के विद्रोहों की श्रृंखला के लिए पृष्ठभूमि तैयार की, इनमें संन्यासी, फकीर व रंगपुर आदि विद्रोह भी सम्मिलित थे।[5] सैनिकों, किसानों एवं कारीगरों आदि द्वारा स्वतः स्फूर्त विद्रोह को संन्यासियों एवं फकीरों ने संगठित सैन्य शक्ति तथा नेतृत्व प्रदान किया।

ईस्ट इंडिया कंपनी द्वारा भू–राजस्व से संबंधित विभिन्न प्रयोगों ने एक तरफ तो किसानों से निर्दयतापूर्वक लगान बसूली की तथा दूसरी तरफ पुराने हिंदू एवं मुसलमान जमींदारों के स्थान पर बिचौलियों का एक नया वर्ग तैयार किया।[6] इन नए लाभार्थियों को कंपनी के प्रशासनिक खर्चों तथा एकतरफा निर्यात हेतु धन की आवश्यकता पड़ी। जिसके लिए कम्पनी ने भूमि की सार्वजनिक नीलामी तथा राजस्व में वृद्धि की। जिसे करने के लिए उसे पूरी छूट प्राप्त थी। 1765 ई. में दीवानी अधिकार प्राप्त करने के उपरांत बंगाल एवं बिहार का राजस्व इसके पूर्व के वर्ष 1764 में 81,80,000 रूपये था जो 1771 में बढ़कर 2,34,00,000 रूपये हो गया था।[7] केवल 1766, 1767 और 1768 में ही 57 लाख पौंड की रकम बंगाल से ले जायी गयी।[8]

किसानों एवं कारीगरों की विभीषिका को 1770–71 ई. के अकाल ने और बढ़ा दिया। इस अकाल के कारण बंगाल की एक–तिहाई जनसंख्या नष्ट हो गई। 150 फकीर अकारण मौत के घाट उतार दिए गए। इसके बावजूद बिना किसी संतुलन के राजस्व की वसूली होता रहा। वारेन हेस्टिंग्स राजस्व की वसूली के पहले के स्तर को बनाए रखने हेतु बल प्रयोग करने में भी नहीं हिचकिचाया।[9] चावल पर ब्रिटिशों के एकाधिकार के कारण बंगाल के लोग अपनी आवश्यकता का दसवॉ हिस्सा भी नहीं खरीद पाते थे। क्योंकि रंगपुर में सामान्य धान का मूल्य 8 से 10 सेर प्रति रूपया था जबकि मुर्शिदाबाद में 1 रू. में 3 सेर के हिसाब से बिक रहा था। रंगपुर, दीनाजपुर, सिलहट एवं ढाका जैसे उत्पादन क्षेत्रों से चावल की बलात वसूली मुर्शिदाबाद एवं कलकत्ता को स्थानांतरण हो रहा था।[10] सरकार के इन रवैयों से जमाखोरी एवं कालाबाजारी बढ़ी तथा किसानों को अगली फसल के लिए सुरक्षित रखे बीजों को भी बेचना पड़ा।

दूसरा महत्त्वपूर्ण कारण कंपनी द्वारा तत्कालीन मुगल प्रांतीय प्रशासन की सेनाओं को धीरे–धीरे समाप्त कर एक ऐसा सेना तैयार करना था जो सीधे कंपनी के नियंत्रण में हो।[11] जिससे मुगल सेना के इन पदच्युत सैनिकों ने लड़ाके संगठनों के विकास में योगदान दिया। यद्यपि ये लोग अपने आजीविका हेतु कृषि को अपना लिया था।[12] कई वर्षों से अनावृष्टि के कारण फसल अच्छी नहीं हुई थी फिर भी ऐसी स्थिति में कंपनी तथा मुगल कर्मचारियों द्वारा खुली लूट के कारण बाध्य होकर उन्हें इनके विरुद्ध सशस्त्र संघर्ष करना पड़ा।

दशनामी नागा संन्यासी तथा मदारी फकीर पूरे देश में तीर्थयात्रा हेतु भ्रमण करते थे। वे अपने धार्मिक एवं सैन्य परंपरा को बनाए रखने के लिए सशस्त्र होकर बंगाल के पांडुआ (मालदा) तथा महास्थानगढ़ (बोगरा) आदि में तीर्थ स्थलों पर जाया करते थे।[13] संन्यासियों तथा फकीरों को कभी–कभी तीर्थ यात्राओं के दौरान कर वसूलने हेतु **'सनद'** प्रदान की जाती थी।[14] उन पर भी तीर्थयात्रा कर लगा दिया गया।

संन्यासियों के इस कार्य को शासक वर्ग एवं सामान्य जन सहिष्णुतापूर्वक सहन करते थे। क्योंकि धनी एवं सामान्य जनता के मध्य धार्मिक गतिविधियों के कारण इन संन्यासियों का बड़ा आदर था।

इनके संगठन में अधिकांश सदस्य पदच्यूत सैनिक, भूमिहीन कृषक, अनाथ, दरिद्र, बेरोजगार, बेच दिए गये अथवा चुराये गए बच्चे, साधु, संत, फकीर तथा धर्म के नाम भटके लोग आदि थे। संन्यासी सैनिक गतिविधियों के लिए अधिक विख्यात रहे किंतु बंगाल में उनको कर लगाने वाले महाजन एवं व्यापारी के रूप में विस्तृत पहचान मिली।[15]

नागा संन्यासियों ने बंगाल के मालदा, दीनाजपुर तथा मैमनसिंह जिलों में कर–मुक्त भूमि प्राप्त की थी।[16] संन्यासियों के साथ भूमि निबटारे के द्वारा जमींदारों को दोहरे उद्देश्य की पूर्ति होती थी। सिबोत्तर का अनुदान जो जमींदारों के लिए एक धार्मिक कार्य था तथा ग्रामीण समाज में यह उनकी प्रतिष्ठा का प्रतीक था। जमींदारों ने दूसरे प्रतिद्वंद्वी जमींदारों से निपटने तथा अपनी सेनाओं को मजबूत बनाने हेतु इन संन्यासियों का सहारा लिया। 1793–94 ई. में संन्यासियों ने पुखुरिया परगना के प्राधिकारी राजशाही जिला के राजा के विरूद्ध शेरपुर के जमींदारों की सहायता की तथा इसके बदले में चंदन गिरि के 21 कुरेस भूमि अनुदान में प्राप्त की।[17] जबकि संन्यासियों को बोआली के आस–पास बड़ा बाजार, दंपरा, पांडुरा, हाट बड़ा बाजार, धीतपुर, तेंगुरी एवं रेनेद आदि लगभग 50 गाँवों में कर–मुक्त भूमि अनुदान में पहले से ही प्राप्त थी।[18]

संन्यासियों द्वारा जमींदारों एवं रैयतों के साथ लेन–देन अथवा महाजनी के पर्याप्त प्रमाण मिलते हैं।[19] उत्तरी बंगाल के जिलों में 12 प्रतिशत तक वार्षिक ब्याज की दर से लेन–देन होता था, वसूली की प्रक्रिया अत्यधिक कठोर एवं जटिल थी। 1789 ई. की एक रिपोर्ट से पता चलता है कि नागा संन्यासी शस्त्रों से सुसज्जित होकर अखाड़ों में रहते थे तथा महाजनी का व्यवसाय करते थे। वे जमींदारों से बलपूर्वक अपने धन की वूसली करते थे तथा कर्ज न चुका पाने की स्थिति में जमींदारों की भूमि को अपने नाम करा लेते थे।[20]

जमींदार एवं किसान दोनों ही इन संन्यासियों महाजनों के ऋणी थे तथा ऋण–निस्तार के बदले में संन्यासियों ने संपत्तियाँ भी खरीदीं। वे अधिकतम दो या तीन माह के लिए 1 रूपए पर 1.5 आना प्रतिमाह की दर से कर्ज देते थे और यदि समय पर कर्ज न चुकाया गया तो चक्रवृद्धि ब्याज की दर से कर्जदारों से नया इकरारनामा लिखवा लेते थे।[21] राजस्व की बढ़ती मांग, अन्य अवैधानिक कर, बीजों की खरीदारी, जानवरों की मृत्यु तथा विवाह आदि अवसरों पर होने वाले खर्चों ने निरीह किसानों को संन्यासियों के पास जाने को बाध्य किया। यद्यपि वे इसके दुष्परिणामों से परिचित थे।[22]

अंग्रेजों की निगाह में ये संन्यासी डाकू तथा भिक्षुक थे किंतु भारतीयों की निगाह में वे गृहत्यागी तथा ईश्वरभक्त थे। अंग्रेज संन्यासी योद्धा के विषय में भ्रमित थे तथा उन्होंने एक स्वर से इन संन्यासियों एवं फकीरों की निंदा की। इन संन्यासियों के विषय में वारेन हेस्टिंगस ने कहा है कि 'संन्यासियों एवं फकीरों के रूप में प्रसिद्ध सिद्धांतविहीन लुटेरों के एक समूह ने इन प्रदेशों को लंबे समय से बाधित कर रखा है। वे तीर्थयात्रा के बहाने बंगाल के मुख्य भाग को आर–पार करने में अभ्यस्त है और जहाँ कहीं भी वे गए, भिक्षा माँगना, चोरी करना तथा लूट–मार करना उनको सुविधाजनक लगता है।[23] वे जिस प्रांत में जाते हैं वहाँ से मोटे–ताजे बच्चों को चुराकर, अपहरण कर, खरीद कर, गोद लेकर, बेरोजगार, लाचार, भूखे–भटके स्वस्थ लोगों को धर्म के नाम पर अपने दल में सम्मिलित कर अपनी संख्या बढ़ाते है।

ये दशनामी संन्यासी धीरे–धीरे बंगाल के असंतुष्ट एवं पीडित किसानों तथा दस्तकारों के साथ धुल मिल गए और इस विद्रोह को गति का प्रदान करने का निष्चय किया। 1760 में इन फकीरों और संन्यासियों ने वर्धमान के राजा और वीरभूम के नवाब असादुज्जमन खान को अंग्रेजों के खिलाफ सहायता दी थी।[24] 1763 में इन्हें बड़ी संख्या में बैकरगंज के इलाके में देखा गया और इनमें से अनेकों को बंदी बना लिया गया। इनका पहला हमला 1763 ई. में ढाका में कम्पनी की कोठी पर हुआ।[25] यह कोठी जुलाहों, बुनकरों और कारीगरों पर जुल्म ढ़ाने की केन्द्र थी। विद्रोहियों ने रात में कोठी पर धावा बोल दिया। पहरेदार, सौदागर और कोठी के व्यवस्थापक भाग निकले। उस कोठी पर अंग्रेज छः माह बाद वह भी सैन्य कार्यवाही के बाद ही दुबारा कब्जा कर पाए। इसी वर्ष संन्यासियों का हमला राजशाही जिले के रामपुर बोआलिया में कम्पनी की कोठी पर हुआ।[26] वहाँ का सारा धन लूट लिया गया किन्तु यहाँ विद्रोहियों को अंग्रेजों से पराजित होना पड़ा। यद्यपि यह व्रिदोह चलता रहा।

20 अप्रैल 1767 को पटना स्थित अंग्रेज फैक्टरी के मालिक थॉमस रमबोल्ड ने अपने पत्र में प्रवर समिति के अध्यक्ष को यह सूचित किया कि 5000 के करीब संन्यासी सारण इलाके में प्रवेश कर चुके है।[27] इन्हें दबाने के लिए सेना भेजी गई। सेना से मुठभेड़ में अनेक फकीरों की मृत्यु हो गई। 1770 में जब बंगाल अकाल की चपेट में आया तब असंख्य व्यक्ति गरीबी और भुखमरी के शिकार हो गए। उन दिनों मदारी समुदाय का मुखिया मजनूशाह लगातार दीनाजपुर क्षेत्रों का भ्रमण कर रहा था। 1771 में उसे और उसके साथियों को कैप्टन जेम्स रेनल ने हराया परंतु अप्रैल के महीने में उसने रंगपुर में प्रवेश कर लिया। शीत ऋतु के आगमन तक रंगपुर के सुपरवाइजर को यह सूचना प्राप्त हो चुका था कि उसके इलाके में फकीर काफी अधिक संख्या में प्रवेश कर चुके है और वे ढाका, किशनगंज, वर्धमान जैसे इलाकों में लूट–मार कर रहे है। अंग्रेजी शासन के संगठित हमलों के बावजूद संन्यासी–फकीर विद्रोह बढ़ता–फैलता रहा।

1773 में महास्थानगढ़ में संन्यासियों का अंग्रेजों से मुठभेड़ हुआ था। उन दिनों विद्रोहियों का प्रधान कार्यक्षेत्र रंगपुर था। दमन के लिए अंग्रेज सेनापति टॉमस बड़ी भारी सेना लेकर आया। 30 दिसम्बर 1772 को प्रातःकाल रंगपुर शहर के पश्चिमी भाग के नजदीक श्यामगंज के मैदान में उसने विद्रोहियों पर आक्रमण कर दिया।[28] जिससे विद्रोही शीघ्र ही भागने लगे। अंग्रेजी फौज ने उनका पीछा किया। लेकिन आगे के जंगलों में अंग्रेजी फौज विद्रोहियों से घिर गयी। विद्रोही उन पर टूट पड़े। अंग्रेजी सेना में देशी सिपाहियों ने भी विद्रोह कर दिया। थोड़ी ही देर में अंग्रेजी सेना मरती–कटती भागने लगी। टॉमस भी मारा गया। रंगपुर के सुपरवाइजर ने रेवेन्यू काउंसिल के पास पत्र भेजा कि किसानों ने हमारी सहायता नहीं की। उल्टे उन्होंने लाठी, भाला आदि लेकर सन्यासियों की तरफ से हमारे विरूद्ध युद्ध किया। जो अंग्रेज जंगल की लम्बी घास को अंदर छिपे थे, किसानों ने उन्हें खोज कर बाहर निकाला और उसे मौत के घाट उतार दिया।

फिर 1772 में मजनूशाह और उनके साथियों ने नटौर के इलाके में लूट–मार की। उनकी गतिविधियों को रोकने के लिए अंग्रेजों ने सेना का इस्तेमाल किया। उनकी गतिविधियाँ दीनाजपुर, रंगपुर और मालदा में व्यापक स्तर पर फैल गई थी। पूर्णिया के सुपरवाइजर ने कोशी नदी के आसपास के घाटों पर सेना नियुक्त कर दी। 1773 में इसी मार्ग से फकीरों ने प्रवेश करने की चेष्टा की। कैप्टन ब्रुक के नेतृत्व में भेजी गई अंग्रेजी सेना केवल कुछ फकीरों को ही बंदी बनाने में सफल हो पाई, अधिकांश बचकर भाग गए।[29] इसी प्रकार असम में उनका विद्रोह इतना जोर पकड़ा कि गौरीपुर (असम) के वर्त्तमान राजा को अपना मूल घर कारीबारी को छोड़ना पड़ा था।[30] 1776 में मजनूशाह ने बोगरा के महास्थानगढ़ में भी एक किला बनवाया था। वे प्रत्येक वर्ष पणडुआ (मालदा) के दरगाह का तीर्थयात्रा करते थे।[31] 1776 में बंगाल के मालदा में ब्रिटिश आर्मी पैट्रिक रॉबर्टसन व उसकी फौज के साथ मजनूशाह के नेतृत्व में संन्यासी–फकीरों का सामना हुआ था। जिसमें रॉबर्टसन और मजनूशाह दोनों घायल हो गए। 1777 में संन्यासी–फकीरों का अंग्रेजों के साथ बोगरा जिला में मुठभेड़ हुआ था। फिर 1782 में मजनूशाह ने संन्यासी–फकीरों के साथ मैमनसिंह जिला में तथा 1786 में पुनः बोगरा जिला में उनका अंग्रेजों के साथ सामना हुआ था। इस प्रकार जनवरी 1787 में मजनूशाह की मृत्यु हो गयी। इसके बाद 1787 में ही रंगपुर में अंग्रेजों के विरूद्ध संन्यासियों का नेतृत्व संन्यासी नेता गणेश गिरी ने किया था। इसी प्रकार मई 1788 में दिनाजपुर में लेउत क्रिस्टी के नेतृत्व में अंग्रेजों का फकीर नेता मूसाशाह के साथ मुठभेड़ हुआ था जिसमें मूसाशाह को भागना पड़ा। सितम्बर 1788 में फकीर नेता चिराग अली दिनाजपुर के नजदीक पकड़ा गया। इसके बाद संन्यासी–फकीर के नेताओं ने संन्यासी–फकीर विद्रोही सेना को संगठित करने का प्रयास करते रहे।

किन्तु होनी को कौन टाल सकता था ? 1793 के बाद ही इस विद्रोह का पतन शुरू हो गया था। वैसे 1777 में ही दोनों समुदायों को एकता बनाये रखने के लिए पीर हामीदुद्दीन को समझाना पड़ा था। हालाँकि उन दोनों समुदायों का संयुक्त अभियान फरवरी 1800 में दिनाजपुर में हुआ था।[32] इस विद्रोह के शीर्षस्थ नेताओं में भवानी पाठक, देवी चौधरानी, गणेश गिरी, मजनूशाह, मूसाशाह, चिराग अली आदि का नाम उनके अविस्मरणीय योगदान के लिए उल्लेखनीय है।

इस प्रकार 18वीं शताब्दी में अंग्रेजी हुकूमत के विरूद्ध बंगाल के संन्यासी–फकीर विद्रोह में फकीर, बेरोजगार भूख से पीड़ित पदच्यूत सैनिक, दस्तकारों व खासकर भारतवर्ष की बहुसंख्यक जनता का प्रतिनिधित्व करने वाले कृषकों आदि का जो सहयोग मिला उसके द्वारा अंग्रेजी सत्ता के अत्याचारों व औपनिवेशिक शोषणों के विरूद्ध खुलेआम चुनौती देते हुए इस विद्रोह को 1763–1800 ई. तक न केवल जारी रखा बल्कि अपनी आर्थिक व धार्मिक आदि समस्याओं को भी शासन व सरकार के समक्ष रखा। यद्यपि यह विद्रोह सफल न हो सका क्योंकि आपसी मतभेद, कमजोर संगठन और स्थायी बन्दोबस्त के दौरान कम्पनी द्वारा अपनाए गए विभिन्न प्रशासनिक उपायों आदि के कारण इस विद्रोह को अंग्रेजों ने कठिनाई से ही दबा तो दिया किन्तु भारतवर्ष के स्वतंत्रता के लिए भविष्य में जितने भी आन्दोलन व विद्रोह हुए उसके शृंखलाओं के लिए निश्चित तौर से उसकी अमिट पृष्ठभूमि तैयार कर दिया।

संदर्भ सूची–

1. ए.एन.चन्द्रा, द संन्यासी रिबेलियन, रत्ना प्रकाशन, कलकत्ता 1977; जैमिनी मोहन घोष, संन्यासी एण्ड फकीर रेडर्स इन बंगाल, बंगाल सेक्रेटेरियट बुक डिपॉट, कलकत्ता, 1930; जे.एन.फरक्यूहर, द आर्गेनाइजेशन ऑफ संन्यासी ऑफ द वेदान्ता, जर्नल ऑफ रॉयल एशिया सोसाइटी, 1925; बर्नार्ड एस.कोहन, द रोल ऑफ गोसाईंस इन द इकोनॉमी ऑफ एटींथ एण्ड नाइनटींथ सेंचुरी अपर इण्डिया, इण्डियन इकोनॉमिक एण्ड सोशल हिस्ट्री रिव्यू, I, नं. 4, 1964; डी.एच.ए.कोल्फ, संन्यासी ट्रेडर सोर्ल्जस, इण्डियन इकोनॉमिक एण्ड सोशल हिस्ट्री रिव्यू, VIII, 1971
2. एन.बी.राय, द अर्ली इनरोड्स ऑफ द नागा सन्यासीज इन बंगाल (1760–1773 ई.), इंडियन हिस्टोरिकल रिकॉर्ड्स कमीशन, भाग–31 (2), पृ. 149
3. सुरंजन चटर्जी, न्यू रिफ्लेक्शंस ऑन द संन्यासी, फकीर एंड पेजेंट वार, इकोनॉमिक एंड पॉलीटिकल वीकली, वाल्यूम 19, नं. 4, 28 जनवरी 1984, पृ. 2
4. एस.के.सिन्हा, द इकोनॉमिक हिस्ट्री ऑफ बंगाल, वॉल्यूम 1, पृ. 169
5. अतीस दासगुप्ता, 'द फकीर एंड संन्यासी रिबेलियन', सोशल साइंटिस्ट, जनवरी 1982, पृ. 45
6. अतीस दासगुप्ता, उपरोक्त, पृ. 45
7. विपिन चन्द्र, आधुनिक भारत, एन.सी.ई.आर.टी., पुनर्मुद्रण मार्च 1986, पृ. 83
8. विपिन चन्द्र, उपरोक्त, एन.सी.ई.आर.टी., पृ. 58
9. सुरंजन चटर्जी, पूर्वोक्त, पृ. 2–13
10. सुरंजन चटर्जी, पूर्वोक्त, पृ. 7
11. अतीस दासगुप्ता, पूर्वोक्त, पृ. 46
12. विश्वनाथ मुखर्जी, वंदेमातरम का इतिहास, सरस्वती विहार, दिल्ली, 1979 पृ. 169
13. अतीत दासगुप्ता, पूर्वोक्त, पृ. 46
14. ए.एन.चंद्रा, द संन्यासी रिबेलियन, रत्ना प्रकाशन, कलकत्ता, 1977 पृ. 17
15. बर्नार्ड एस.कोहन, द रोल ऑफ गोसाईंस इन द इकोनॉमी ऑफ एटींथ एण्ड नाइनटींथ सेंचुरी अपर इण्डिया, इण्डियन इकोनॉमिक एण्ड सोशल हिस्ट्री रिव्यू, I, नं. 4, 1964; डी.एच.ए.कोल्फ, संन्यासी ट्रेडर सोर्ल्जस, इण्डियन इकोनॉमिक एण्ड सोशल हिस्ट्री रिव्यू, VIII, 1971, पृ. 176
16. जे.सी. सेनगुप्ता (सं.), 'डिस्ट्रिक्ट गजेटियर, मालदा, कलकता 1969, पृ. 57; डिस्ट्रिक्ट गजेटियर वेस्ट दीनाजपुर', कलकत्ता, 1965, पृ. 48–49; प्रोसीडिंग्स ऑफ प्रॉविंशियल काउंसिल ऑफ रेवेन्यू ऑफ ढाका, 12 मई 1780 ये सभी अतीस के. दासगुप्ता, द फकीर एंड संन्यासी अपराइजिंग्स, के.पी. बागची एंड कंपनी, कलकत्ता, 1 जुलाई 1992, पृ. 23 पर उद्धृत
17. जे.एम.घोष, पूर्वोक्त, पृ. 3
18. सुरंजन चटर्जी, पूर्वोक्त, पृ. 3
19. इरफान हबीब, 'यूजर इन मेडिएवल इंडिया', कंपैरेटिव स्टडीज इन सोसाइटी एंड हिस्ट्री, भाग–4, 1964, पृ. 397
20. इ.जी. ग्लेजियर, ए रिपोर्ट ऑन द डिस्ट्रिक्ट ऑफ रंगपुर, अपेंडिक्स नं. 14, पृ. 88–89; अतीस के. दासगुप्ता, पूर्वोक्त, पृ. 24
21. सुरंजन चटर्जी, पूर्वोक्त, पृ. 3–4

22. जेड, मलिक, 'एग्रेरियन स्ट्रक्चर ऑफ बंगाल एट द बिगिनिंग ऑफ ब्रिटिश कनक्वेस्ट', इंडियन हिस्ट्री कांग्रेस प्रोसीडिंग्स, 35वां सत्र, जाधवपुर, कलकत्ता, 1974
23. जे.एम.घोष, संन्यासी एंड फकीर रेडर्स इन बंगाल, पृ. 9; ग्लेम्ब, मैम्वायर्स ऑफ वारेन हेस्टिंग्स, पृ. 303–304; संन्यासी एंड फकीर रेडर्स इन बंगाल, पृ. 18; डब्यू.डब्ल्यू. हंटर, एनल्स ऑफ रूरल बंगाल, भाग 1, स्मिथ ईल्डर एंड कंपनी, लंदन, 1868, पृ. 70–71
24. आर.सी. मजूम्दार, हिस्ट्री ऑफ फ्रीडम मूवमेन्ट इन इंडिया, भाग 1, पृ. 70; अतीस दासगुप्ता, द फकीर एण्ड संन्यासी रिबेलियन, सोशल सांइटिस्ट, भाग 10, नं. 1, जनवरी 1982, पृ. 48
25. सेक्रेट डिपार्टमेंट प्रोसीडिंग्स, 5 दिसम्बर, 1763; अतीस दासगुप्ता, उपरोक्त, पृ. 47
26. लेटर ऑफ द क्लेक्टर ऑफ लसकरपुर टू द प्रेसिडेंट ऑफ काउंसिल, 4 मार्च 1773; अतीस दासगुप्ता, उपरोक्त, पृ. 47
27. रामलखन शुक्ल, आधुनिक भारत का इतिहास, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेषालय दिल्ली विष्वविद्यालय, 10 केवेलरी लेन, दिल्ली 110007, 24वाँ पुर्नमुद्रण, अप्रैल 2015, पृ. 207
28. एक्सट्रैक्ट्स फ्रॉम ए लेटर टू द प्रेसिडेंट ऑफ काउंसिल फ्रॉम चार्ल्स पेर्लिन, 31 दिसम्बर 1772; अतीस दासगुप्ता, पूर्वोक्त, सोशल सांइटिस्ट, भाग 10, नं. 1, जनवरी 1982,, पृ. 48–49
29. रामलखन शुक्ल, पूर्वोक्त, पृ. 207
30. अतीस दासगुप्ता, पूर्वोक्त, पृ. 50; बोगरा डिस्ट्रिक्ट गजेटियर, पृ. 126–127
31. लेटर फ्रॉम द क्लेक्टर ऑफ भागलपुर टू द कौंसिल ऑफ रेवेन्यू एट फोर्ट विलियम, 22 जून 1784; अतीस दासगुप्ता, पूर्वोक्त, पृ. 50
32. अतीस दास गुप्ता, पूर्वोक्त, पृ. 52